[2019] 2 उम. नि. प. 299

स्नेहलता गोयल

बनाम

पुष्पलता और अन्य

7 जनवरी, 2019

न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई. चन्द्रचूड़ और न्यायमूर्ति हेमन्त गुप्ता

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 21 और 47 – न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में आक्षेप – निष्पादन न्यायालय की अधिकारिता – क्षेत्रीय अधिकारिता की कमी के आधार पर किसी डिक्री की विधिमान्यता के संबंध में आक्षेप निष्पादन न्यायालय के समक्ष नहीं किया जा सकता है ।

प्रस्तुत मामले में, वादी द्वारा वादगत संपत्ति में, जिसके अंतर्गत रांची और वाराणसी स्थित संपत्तियां आती हैं, अपने एक-चौथाई अंश की बाबत एक विभाजन वाद फाइल किया गया था । यह वाद रांची में विशेष अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय में संस्थित किया गया था । उस वाद में प्रतिवादी (अब मृत) ने रांची न्यायालयों की अधिकारिता को प्रश्नगत करते हुए पटना उच्च न्यायालय के समक्ष एक याचिका फाइल की । उस याचिका का निपटारा उच्च न्यायालय द्वारा इस निदेश के साथ कर दिया गया था कि अधिकारिता संबंधी किसी आक्षेप को विशेष अधीनस्थ न्यायाधीश, रांची द्वारा प्रारंभिक विवाद्यक के रूप में विनिश्चित किया जाएगा । एकपक्षीय रूप से याची को अनुसूचीगत संपत्ति में एक-चौथाई अंश मंजूर करते हुए एक प्रारंभिक डिक्री पारित की गई थी । अंतिम डिक्री तारीख 5 अप्रैल, 1991 को पारित की गई थी, जिसके द्वारा प्रारंभिक डिक्री को पुष्ट किया गया था । विभाजन वाद में के प्रतिवादियों में से एक प्रतिवादी ने अधीनस्थ न्यायाधीश, रांची के न्यायालय में एक हक वाद फाइल किया । वह वाद गैर अभियोजन के कारण खारिज कर दिया गया था । प्रथम प्रत्यर्थी ने अधीनस्थ न्यायाधीश, वाराणसी के न्यायालय के समक्ष एक हक वाद फाइल किया जो कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7, नियम 11 के अधीन

इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि वह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21क के अधीन वर्जित है । प्रथम प्रत्यर्थी ने आदेश 9, नियम 13 के अधीन हक वाद की बाबत रांची में एक आवेदन फाइल किया, जो कि वापस लिए जाने के आधार पर खारिज कर दिया गया था । चूंकि जब वाद संस्थित किया गया था उस समय अपीलार्थी की माता जीवित थी इसलिए दावे को एक-चौथाई अंश तक सीमित रखा गया था । वाद के लंबित रहने के दौरान माता की मृत्यु हो गई । परिणामस्वरूप, तीन बहनों के अंशों में उपांतरण हो गया और प्रत्येक का एक-तिहाई अंश हो गया । अधीनस्थ न्यायाधीश, रांची ने अपीलार्थी की माता और प्रथम प्रत्यर्थी की मृत्यु हो जाने के कारण अनुपूरक अंतिम डिक्री पारित की । अपीलार्थी ने अंतिम डिक्री के निष्पादन के लिए रांची में कार्यवाहियां फाइल कीं । प्रथम प्रत्यर्थी ने यह दलील देते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन आक्षेप फाइल किया कि प्रारंभिक डिक्री, अंतिम डिक्री और अनुपूरक अंतिम डिक्री अधिकारितारहित थीं और इसलिए वे अकृत थीं । प्रथम प्रत्यर्थी ने अंतिम डिक्री को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन चुनौती दी । वह अपील लंबित है । निष्पादन न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन प्रथम प्रत्यर्थी के आक्षेपों को खारिज कर दिया । प्रथम प्रत्यर्थी ने, निष्पादन न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ कीं । उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि निष्पादन न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की थी कि उसे क्षेत्रीय अधिकारिता के अभिकथित अभाव के आधार पर डिक्री की विधिमान्यता के बारे में आक्षेप ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं थी । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यह अभिवाक् कि डिक्री इस आधार पर निष्पादित नहीं की जा सकती थी कि वह ऐसे न्यायालय द्वारा पारित की गई थी जिसे विभाजन वाद ग्रहण करने की क्षेत्रीय अधिकारिता नहीं थी, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन किया जा सकता था । उच्च न्यायालय ने आक्षेप उठाने संबंधी आवेदन निपटारे के लिए निष्पादन न्यायालय की फाइल पर प्रत्यावर्तित कर दिया गया था । उच्च न्यायालय के निर्णय को चुनौती देते हुए ये कार्यवाहियां संस्थित की गई हैं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 के उपबंधों से, जिसे विधान-मंडल ने जानबूझकर अंगीकार किया है, प्रचुर रूप से यह स्पष्ट होगा कि क्षेत्रीय अधिकारिता की कमी से संबंधित कोई आक्षेप किसी सिविल न्यायालय की वाद ग्रहण करने संबंधी अधिकारिता और उसकी अंतर्निहित कमी की जड़ तक नहीं पहुंचता है । अतः, यह आक्षेप प्रथम बार के न्यायालय में यथासंभव सर्वप्रथम अवसर पर और ऐसे सभी मामलों में, जहां विवाद्यकों का स्थिरीकरण हो गया है वहां ऐसे स्थिरीकरण पर या उससे पूर्व किया जाना होगा । इसके अलावा, जहां न्याय की पारिणामिक निष्फलता होती है वहां वाद लाने के स्थान के बारे में कोई आक्षेप ग्रहण किया जा सकता है । इन दोनों शर्तों को पूरा करना होगा । (पैरा 9)

प्रस्तुत मामले में, निष्पादन में जो आक्षेप किया गया था उसका संबंध वाद की विषयवस्तु से नहीं है । यह क्षेत्रीय अधिकारिता से संबंधित आक्षेप था, जो कि किसी सिविल न्यायालय द्वारा वाद ग्रहण करने संबंधी अधिकारिता या उसकी अंतर्निहित कमी की जड़ तक नहीं जाता है । कोई निष्पादन न्यायालय डिक्री से पीछे नहीं हट सकता और उसे डिक्री को उसी रूप में, जैसी वह है, निष्पादित करना चाहिए । इस पृष्ठभूमि में, उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में प्रकटतः त्रुटि की थी कि यह विनिश्चित करना निष्पादन न्यायालय की अधिकारिता के भीतर है कि विभाजन के वाद में डिक्री क्षेत्रीय अधिकारिता के अभाव में पारित की गई थी अथवा नहीं । (पैरा 14 और 15)

प्रत्यर्थी ने प्रथम अपील फाइल की है जिसमें अधिकारिता संबंधी प्रश्न उठाया गया है । यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि प्रस्तुत निर्णय में निकाले गए निष्कर्ष से प्रथम अपील में पक्षकारों के अधिकारों और उनकी दलीलों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा । उच्च न्यायालय ने निष्पादन न्यायालय के निर्णय को उलटते समय प्रकटतः अधिकारिता से परे कार्य किया है, जिसने उस न्यायालय की ओर से जिसने डिक्री पारित की थी, क्षेत्रीय अधिकारिता की कमी के आधार पर डिक्री के निष्पादन के संबंध में आक्षेप को ग्रहण करने से इनकार करके सही किया था । (पैरा 16 और 17)

इस दलील में भी कोई सार नहीं है कि उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय, जो कि प्रतिप्रेषण संबंधी आदेश है, अंतर्वर्ती आदेश की प्रकृति का है, जिसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा निष्पादन न्यायालय को क्षेत्रीय अधिकारिता की कमी के आधार पर डिक्री की विधिमान्यता के संबंध में आक्षेप ग्रहण करने का निदेश दिया है । ऐसा आक्षेप निष्पादन न्यायालय के समक्ष नहीं किया जाएगा । इसके अतिरिक्त, यह आक्षेप कि रांची स्थित संपत्ति एक ही पूर्वज की नहीं थी, गुणागुण का विषय है, जो कि हर हालत में प्रथम अपील में समुचित न्यायालय के समक्ष उठाया जाना चाहिए । अपील मंजूर की जाती है और उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है । निष्पादन न्यायालय, निष्पादन कार्यवाहियों को शीघ्रतापूर्वक पूरा करेगा । (पैरा 18 और 19)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[1954]	ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 340 : **किरन सिंह** बनाम **चमन पासवान** ।	8, 11, 12

निर्दिष्ट निर्णय

[2009]	(2009) 2 एस. सी. सी. 244 : **मंटू सरकार** बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** ;	13
[2007]	(2007) 2 एस. सी. सी. 355 : **हशम अब्बास सैयद** बनाम **उस्मान अब्बास सैयद** ;	13
[2005]	(2005) 7 एस. सी. सी. 791: **हर्षद चिमन लाल मोदी** बनाम **डी.एल.एफ. यूनिवर्सल लिमिटेड** ;	8
[1974]	[1974] 3 उम. नि. प. 1685 = (1970) 1 एस. सी. सी. 670 : **वासुदेव धनजीभाई मोदी** बनाम **राजाभाई अब्दुल रहमान** ;	14

[1962] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 199 :
हीरालाल बनाम **कालीनाथ** । 13

सिविल अपीली अधिकारिता : 2019 की सिविल अपील सं. 116.

2016 की रिट याचिका (सिविल) सं. 3298 में झारखंड उच्च न्यायालय की रांची न्यायपीठ के तारीख 17 जुलाई, 2018 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री मुकुल रोहतगी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, समदर्शी संजय, श्यामल कुमार और सुनील तोमर

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एस. आर. सिंह, ज्येष्ठ अधिवक्ता, मंगल प्रसाद, (सुश्री) सुनीता पंडित, कृष्ण कुमार यादव, अवनीश सिंह, अंकुर यादव, डी. एस. परमार और (सुश्री) सुजीता श्रीवास्तव

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई. चन्द्रचूड़ ने दिया ।

न्या. (डा.) चन्द्रचूड़ – इजाजत दी जाती है ।

2. यह अपील झारखंड उच्च न्यायालय की रांची न्यायपीठ के तारीख 15/17 जुलाई, 2018 के निर्णय और आदेश से उद्भूत हुई है ।

3. इस मामले के तथ्य संक्षिप्त हैं ।

तारीख 9 मई, 1985 को, श्रीमती सरोजा रानी, पुत्री स्व. राय श्री कृष्ण (अब मृत) द्वारा वादगत संपत्ति में, जिसके अंतर्गत रांची और वाराणसी स्थित संपत्तियां आती हैं, अपने एक-चौथाई अंश की बाबत एक विभाजन वाद (1985 का 154) फाइल किया गया था । यह वाद रांची में विशेष अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय में संस्थित किया गया था । उस वाद में प्रतिवादी (अब मृत) ने रांची न्यायालयों की अधिकारिता को प्रश्नगत करते हुए पटना उच्च न्यायालय के समक्ष एक याचिका फाइल की । उस याचिका का निपटारा उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 10 मई, 1989 को इस निदेश के साथ कर दिया गया था कि अधिकारिता संबंधी किसी आक्षेप को विशेष अधीनस्थ न्यायाधीश, रांची

द्वारा प्रारंभिक विवाद्यक के रूप में विनिश्चित किया जाएगा । तारीख 13 जून, 1990 को एकपक्षीय रूप से याची को अनुसूचीगत संपत्ति में एक-चौथाई अंश मंजूर करते हुए एक प्रारंभिक डिक्री पारित की गई थी । अंतिम डिक्री तारीख 5 अप्रैल, 1991 को पारित की गई थी, जिसके द्वारा तारीख 13 जून, 1990 को पारित प्रारंभिक डिक्री को पुष्ट किया गया था ।

विभाजन वाद में के प्रतिवादियों में से एक प्रतिवादी ने अधीनस्थ न्यायाधीश, रांची के न्यायालय में एक हक वाद (1988 का 114) फाइल किया । वह वाद तारीख 22 जुलाई, 2003 को गैर अभियोजन के कारण खारिज कर दिया गया था । प्रथम प्रत्यर्थी ने अधीनस्थ न्यायाधीश, वाराणसी के न्यायालय के समक्ष एक हक वाद (2000 का 176) फाइल किया जो कि तारीख 12 अप्रैल, 2005 को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7, नियम 11 के अधीन इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि वह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21क के अधीन वर्जित है । प्रथम प्रत्यर्थी ने आदेश 9, नियम 13 के अधीन हक वाद की बाबत रांची में एक आवेदन फाइल किया, जो कि तारीख 19 फरवरी, 2008 को वापस लिए जाने के आधार पर खारिज कर दिया गया था ।

चूंकि जब वाद संस्थित किया गया था उस समय अपीलार्थी की माता जीवित थी इसलिए दावे को एक-चौथाई अंश तक सीमित रखा गया था । वाद के लंबित रहने के दौरान माता की मृत्यु हो गई । परिणामस्वरूप, तीन बहनों के अंशों में उपांतरण हो गया और प्रत्येक का एक-तिहाई अंश हो गया । अधीनस्थ न्यायाधीश, रांची ने तारीख 18 दिसम्बर, 2013 को अपीलार्थी की माता और प्रथम प्रत्यर्थी की तारीख 9 फरवरी, 1996 को मृत्यु हो जाने के कारण अनुपूरक अंतिम डिक्री पारित की ।

4. अपीलार्थी ने तारीख 12 मई, 2014 को अंतिम डिक्री के निष्पादन के लिए रांची में कार्यवाहियां (2014 का 5) फाइल कीं । प्रथम प्रत्यर्थी ने तारीख 1 जनवरी, 2015 को यह दलील देते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन आक्षेप फाइल किया कि तारीख 13 जून, 1990 की डिक्री, तारीख 5 अप्रैल, 1991 की अंतिम डिक्री और तारीख 18 दिसम्बर, 2013 की अनुपूरक अंतिम डिक्री अधिकारितारहित थीं और इसलिए वे अकृत थीं । प्रथम प्रत्यर्थी ने तारीख 10 मार्च, 2015

को तारीख 13 जून, 1990 की डिक्री को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन चुनौती दी । वह अपील लंबित है ।

5. तारीख 10 मार्च, 2016 को, निष्पादन न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन प्रथम प्रत्यर्थी के आक्षेपों को निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों सहित खारिज कर दिया :-

> "डिक्रीधारक डिक्री के परिणामों को प्राप्त करने का हकदार है और निष्पादन न्यायालय डिक्री से पीछे नहीं हट सकता । जब कोई डिक्री किसी ऐसे न्यायालय द्वारा की जाती है जिसके पास कोई अंतर्निहित अधिकारिता नहीं है तब उसकी विधिमान्यता के बारे में कोई आक्षेप किसी निष्पादन कार्यवाही में तब उठाया जा सकेगा यदि वह आक्षेप अभिलेख को देखते ही प्रतीत होता है । जहां डिक्री पारित करने संबंधी न्यायालय की अधिकारिता के बारे में किया गया आक्षेप अभिलेख को देखते ही प्रतीत नहीं होता है और उठाए गए उन प्रश्नों की, जो कि उठाए जा सकते थे किन्तु उठाए नहीं गए थे, परीक्षा करना और विचारण में उन्हें विनिश्चित करना आवश्यक हो जाता है वहां निष्पादन न्यायालय के पास अधिकारिता के आधार पर डिक्री की विधिमान्यता के बारे में कोई आक्षेप ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं होगी ।"

प्रथम प्रत्यर्थी ने, निष्पादन न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ कीं । उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि निष्पादन न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की थी कि उसे क्षेत्रीय अधिकारिता के अभिकथित अभाव के आधार पर डिक्री की विधिमान्यता के बारे में आक्षेप ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं थी ।

6. उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यह अभिवाक् कि डिक्री इस आधार पर निष्पादित नहीं की जा सकती थी कि वह ऐसे न्यायालय द्वारा पारित की गई थी जिसे विभाजन वाद ग्रहण करने की क्षेत्रीय अधिकारिता नहीं थी, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन किया जा सकता था । उच्च न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :-

"निष्पादन न्यायालय ने विधि की दृष्टि से गंभीर त्रुटि की है जहां उसने यह मत व्यक्त किया है कि निष्पादन न्यायालय को अधिकारिता के आधार पर डिक्री की विधिमान्यता के बारे में कोई आक्षेप ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं होगी । याची ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन डिक्री की विधिमान्यता को गुणागुण के आधार पर चुनौती नहीं दी है, इसके विपरीत उसके द्वारा किया गया अभिवाक् यह है कि डिक्री का निष्पादन इसलिए नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह ऐसे न्यायालय द्वारा पारित की गई है जिसे 1985 के विभाजन वाद सं. 154 को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं थी ।"

अतः, आक्षेप उठाने संबंधी आवेदन निपटारे के लिए निष्पादन न्यायालय की फाइल पर प्रत्यावर्तित कर दिया गया था ।

7. उच्च न्यायालय के निर्णय को चुनौती देते हुए ये कार्यवाहियां संस्थित की गई हैं ।

अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री मुकुल रोहतगी ने यह दलील दी है कि क्षेत्रीय अधिकारिता के संबंध में किए जाने वाले आक्षेप का संबंध सिविल न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता से नहीं होता है । ऐसा आक्षेप उस न्यायालय के समक्ष किया जाना होता है और उस न्यायालय द्वारा ऐसे आक्षेप को नामंजूर किए जाने की दशा में उसे अपील में सक्षम न्यायालय के समक्ष उठाया जाना चाहिए । परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय ने निष्पादन न्यायालय को ऐसे आक्षेप के संबंध में कार्यवाही करने का निदेश देकर गलती की थी । इसके अलावा, इस बात पर जोर दिया गया था कि प्रत्यर्थी उन कार्यवाहियों से भिज्ञ था जो की जा रही थीं, जो कि निम्नलिखित परिस्थितियों से प्रकट होता है :–

(i) प्रत्यर्थी ने रांची में न्यायालय के समक्ष एक हक वाद फाइल किया था जो कि तारीख 22 जुलाई, 2003 को गैर-अभियोजन के आधार पर खारिज कर दिया गया था ;

(ii) प्रत्यर्थी ने वाराणसी में न्यायालय के समक्ष एक हक वाद फाइल किया था जो कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम

11 के अधीन तारीख 12 अप्रैल, 2005 को खारिज कर दिया गया था ; और

(iii) प्रत्यर्थी ने रांची में फाइल किए गए हक वाद की बाबत आदेश 9, नियम 13 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था और वह भी तारीख 19 फरवरी, 2008 को वापस लिए जाने के आधार पर खारिज कर दिया गया था ।

इन परिस्थितियों के आधार पर इस बात पर जोर दिया गया था कि वह आक्षेप, जिसे निष्पादन में उठाने के लिए अनुज्ञात किया गया है, उस डिक्री के, जो कि विभाजन वाद में पारित की गई है, कार्यान्वयन में विलंब करने और बाधित करने का एक प्रयत्न मात्र है ।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री एस. आर. सिंह ने निम्नलिखित दलीलें दी हैं :-

(i) क्षेत्रीय अधिकारिता की कमी से संबंधित कोई आक्षेप वाद की विषयवस्तु के संबंध में आक्षेप होता है और इसलिए वह ऐसी प्रकृति का होता है जो कि निष्पादन न्यायालय के समक्ष उठाया जा सकता है । इसके समर्थन में, **किरन सिंह** बनाम **चमन पासवान**[1] और **हर्षद चिमन लाल मोदी** बनाम **डी.एल.एफ. यूनिवर्सल लिमिटेड**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लिया गया है ;

(ii) उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय एक अंतर्वर्ती आदेश है और इसलिए इस प्रक्रम पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन कोई कार्यवाही ग्रहण करना उचित नहीं है ; और

(iii) प्रत्यर्थियों का पक्षकथन प्रारंभ से यह रहा है कि वह संपत्ति जिसके आधार पर रांची में अधिकारिता को आधार बनाया गया था, एक ही पूर्वज की नहीं थी और उस दशा में, रांची स्थित सिविल न्यायालय को विभाजन के लिए वाद ग्रहण करने की कोई अधिकारिता नहीं थी ।

---

[1] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 340.

[2] (2005) 7 एस. सी. सी. 791.

9. परस्पर-विरोधी दलीलों के गुणागुण का निर्धारण करने के लिए, प्रारंभ में ही सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 के उपबंधों का उल्लेख करना आवश्यक होगा :–

> "धारा 21(1) में यह अनुध्यात है कि वाद लाने के स्थान के संबंध में कोई भी आक्षेप किसी भी अपील या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तब तक अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसा आक्षेप प्रथम बार के न्यायालय में यथासंभव सर्वप्रथम अवसर पर और उन सभी मामलों में, जिनमें विवाद्यक स्थिर किए जाते हैं, ऐसे स्थिरीकरण के समय या उसके पहले न किया गया हो और जब तक कि उसके परिणामस्वरूप न्याय की निष्फलता न हुई हो ।
>
> (2) किसी न्यायालय की अधिकारिता की धन-संबंधी परिसीमा के आधार पर उसकी सक्षमता के बारे में कोई आक्षेप किसी अपील या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तब तक अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसा आक्षेप प्रथम बार के न्यायालय में यथासंभव सर्वप्रथम अवसर पर और उन सभी मामलों में, जिनमें विवाद्यक स्थिर किए जाते हैं, ऐसे स्थिरीकरण के समय या उसके पहले न किया गया हो और जब तक कि उसके परिणामस्वरूप न्याय की निष्फलता न हुई हो ।
>
> (3) किसी निष्पादन न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के आधार पर उसकी सक्षमता के बारे में कोई आक्षेप अपील या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तब तक अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसा आक्षेप निष्पादन न्यायालय में यथासंभव सर्वप्रथम अवसर पर न किया गया हो और जब तक कि उसके परिणामस्वरूप न्याय की निष्फलता न हुई हो ।"

धारा 21 की उपधारा (1) में यह उपबंध किया गया है कि किसी अपील या पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष क्षेत्रीय अधिकारिता के संबंध में कोई आक्षेप करने से पूर्व दो पुरोभाव्य शर्तें अवश्य पूरी की जानी चाहिएं :–

(i) वह आक्षेप प्रथम बार के न्यायालय में यथासंभव सर्वप्रथम अवसर पर किया जाना चाहिए; और

(ii) उसके परिणामस्वरूप न्याय की निष्फलता हुई हो ।

इस उपबंध से, जिसे विधान-मंडल ने जानबूझकर अंगीकार किया है, प्रचुर रूप से यह स्पष्ट होगा कि क्षेत्रीय अधिकारिता की कमी से संबंधित कोई आक्षेप किसी सिविल न्यायालय की वाद ग्रहण करने संबंधी अधिकारिता और उसकी अंतर्निहित कमी की जड़ तक नहीं पहुंचता है । अतः, यह आक्षेप प्रथम बार के न्यायालय में यथासंभव सर्वप्रथम अवसर पर और ऐसे सभी मामलों में, जहां विवाद्यकों का स्थिरीकरण हो गया है वहां ऐसे स्थिरीकरण पर या उससे पूर्व किया जाना होगा । इसके अलावा, जहां न्याय की पारिणामिक निष्फलता होती है वहां वाद लाने के स्थान के बारे में कोई आक्षेप ग्रहण किया जा सकता है । इन दोनों शर्तों को पूरा करना होगा ।

10. प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि क्षेत्रीय अधिकारिता की कमी के बारे में आक्षेप विचारण न्यायालय के समक्ष लिखित कथन में किया गया था । किन्तु, वह वाद स्पष्टतया प्रत्यर्थियों द्वारा कार्यवाहियों में भाग लेने में असफल होने के पश्चात् एकपक्षीय रूप में डिक्री कर दिया गया था । धारा 21(1) के उपबंधों में यह स्पष्ट विधायी आज्ञा है कि इस प्रकृति का आक्षेप विवाद्यक के स्थिरीकरण से पूर्व यथासंभव सर्वप्रथम अवसर पर किया जाना होता है । इसके अतिरिक्त, किसी अपील या पुनरीक्षण अधिकारिता द्वारा ऐसा कोई आक्षेप तब तक अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है जब तक शर्तों के दोनों समूहों की पूर्ति नहीं कर दी जाती है ।

11. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल ने **किरन सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के चार न्यायाधीशों के निर्णय का पर्याप्त मात्रा में अवलंब लिया है । उस मामले में, वाद के मूल्यांकन के संबंध में विवाद था । इस विवाद्यक द्वारा उस न्यायालय के संबंध में अंतिम रूप से निर्धारण हो जाएगा जिसमें विचारण न्यायालय के निर्णय से उद्भूत होने वाली अपील की जाएगी । यदि वाद का मूल्यांकन, जैसा कि वाद में उपवर्णित किया गया है, स्वीकार किया जाना था तो अपील जिला न्यायालय में की जाएगी । दूसरी ओर, यदि उच्च न्यायालय द्वारा यथा-अवधारित मूल्यांकन स्वीकार किया जाना था तो अपील उच्च न्यायालय के समक्ष न कि जिला न्यायालय के समक्ष की जाएगी । इस न्यायालय ने इसी पृष्ठभूमि में यह अभिनिर्धारित किया कि मूलभूत सिद्धांत के रूप में, अधिकारितारहित किसी न्यायालय

द्वारा पारित डिक्री अकृत है और जहां कहीं इसे प्रवर्तित कराने या अवलंब लेने की ईप्सा की जाती है, वहां इसकी विधिमान्यता को किसी सांपार्श्विक कार्यवाही में निष्पादन के प्रक्रम पर भी स्थापित किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अधिकारिता संबंधी कमी, चाहे वह धनीय हो या क्षेत्रीय अथवा वह कार्रवाई की विषयवस्तु की बाबत हो, न्यायालय के डिक्री पारित करने संबंधी प्राधिकार पर ही वार करती है और उसमें पक्षकारों की सम्मति से भी सुधार नहीं किया जा सकता है । इसके पश्चात्, न्यायालय ने इस मूलभूत सिद्धांत के संबंध में वाद मूल्यांकन अधिनियम, 1887 की धारा 11 के प्रभाव की परीक्षा की । इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "7. धारा 11 में यह अधिनियमित है कि कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 की धारा 578 में किसी बात के होते हुए भी, यह आक्षेप कि किसी न्यायालय ने, जिसे किसी वाद या अपील के संबंध में कोई अधिकारिता नहीं थी, वाद या अपील के अतिमूल्यांकन या न्यूनमूल्यांकन के कारण उसका प्रयोग किया था, किसी अपील न्यायालय द्वारा धारा में यथा-उपबंधित के सिवाय ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए ... किसी ऐसे न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को, जिसे किसी वाद या अपील की सुनवाई करने की अधिकारिता तब नहीं होती यदि अतिमूल्यांकन या न्यूनमूल्यांकन न किया गया होता, अकृत और शून्य नहीं समझा जाना है, जो कि तब होती यदि यह धारा न होती और अतिमूल्यांकन या न्यूनमूल्यांकन पर आधारित अधिकारिता संबंधी किसी आक्षेप पर उस धारा के अधीन न कि अन्यथा कार्यवाही की जानी चाहिए । धारा के आरंभिक शब्दों में धारा 578 के प्रति निर्देश, जो कि अब सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 99 है, महत्वपूर्ण है । वह धारा, यह उपबंध करते हुए कि कोई भी डिक्री उसमें उल्लिखित त्रुटियों के कारण अपील में न तो उलटी जाएगी और न ही उपांतरित की जाएगी, अधिकारिता संबंधी त्रुटियों को अपने प्रवर्तन से वर्जित करती है । अतः, धारा 99 में गुणागुण के आधार पर पारित की गई डिक्रियों को तब कोई संरक्षण प्रदान नहीं किया गया है जब उन न्यायालयों को, जिन्होंने उन डिक्रियों को पारित किया है, अतिमूल्यांकन या न्यूनमूल्यांकन के परिणामस्वरूप अधिकारिता

प्राप्त नहीं थी । इस परिणाम से बचने की दृष्टि से धारा 11 अधिनियमित की गई थी । इस धारा में यह उपबंध किया गया है कि अतिमूल्यांकन या न्यूनमूल्यांकन के आधार पर किसी न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में आक्षेप किसी अपील न्यायालय द्वारा, उस धारा में उल्लिखित रीति और विस्तार के सिवाय, ग्रहण नहीं किया जाएगा । यह एक स्वतः पूर्ण उपबंध है जो कि अपने आप में संपूर्ण है और अतिमूल्यांकन या न्यूनमूल्यांकन पर आधारित अधिकारिता संबंधी कोई आक्षेप उसके अनुसार ही किया जा सकता है । क्षेत्रीय अधिकारिता से संबंधित आक्षेपों के संबंध में, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 में यह अधिनियमित है कि वाद लाने के स्थान के संबंध में कोई भी आक्षेप किसी भी अपील या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तब तक अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि उसके परिणामस्वरूप न्याय की निष्फलता न हुई हो । यह वही सिद्धांत है जो कि वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 में धनीय अधिकारिता के प्रति निर्देश से अपनाया गया है । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 और धारा 99 तथा वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 में अंतर्निहित नीति एक ही है, अर्थात्, यह कि जब किसी मामले का किसी न्यायालय द्वारा गुणागुण के आधार पर विचारण किया गया हो और निर्णय दे दिया गया हो तब उसे पूर्णतः तकनीकी आधारों पर उलटा नहीं जाना चाहिए जब तक कि उसके परिणामस्वरूप न्याय की निष्फलता न हुई हो और विधान-मंडल की नीति यही रही है कि क्षेत्रीय और धनीय, दोनों प्रकार की अधिकारिता से संबंधित आक्षेपों को तकनीकी माना जाता है और उन पर किसी अपील न्यायालय द्वारा तब तक विचार नहीं किया जा सकता है जब तक उसके कारण गुणागुण पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ा हो ।"

(जोर देने के लिए रेखांकन किया गया है)

12. इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि किसी ऐसे न्यायालय द्वारा, जिसे केवल अतिमूल्यांकन या न्यूनमूल्यांकन के कारण ही अपील को ग्रहण करने की अधिकारिता थी, अपील में पारित किसी डिक्री को इस आधार पर अपास्त किया जा सकता है कि सही मूल्यांकन करने पर वह न्यायालय अपील को ग्रहण करने के लिए सक्षम नहीं था,

यह अभिनिर्धारित किया कि मात्र न्यायालय में परिवर्तन होने से वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 के अंतर्गत प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है । इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "12. ..इस धारा की भाषा के आधार पर कोई भिन्न निष्कर्ष निकालना असंभव है । यदि किसी अपील की किसी अधीनस्थ न्यायालय या जिला न्यायालय द्वारा सुनवाई किए जाने संबंधी तथ्य से, जहां यदि सही मूल्यांकन किया गया होता तो अपील उच्च न्यायालय में की गई होती, स्वयमेव कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तो अधीनस्थ न्यायालय या जिला न्यायालय द्वारा पारित की गई डिक्री अपास्त की जानी चाहिए और 'जब तक उसके अतिमूल्यांकन या न्यूनमूल्यांकन का वाद या अपील के उसके गुणागुण के आधार पर निपटारे पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ा हो' शब्द पूर्णतः निरर्थक हो जाएंगे । इन शब्दों से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि ऐसे मामलों में पारित की गई डिक्रियों में किसी अपील न्यायालय में हस्तक्षेप किया जा सकता है, सामान्य अनुक्रम में, सभी मामलों में नहीं बल्कि केवल तभी यदि उसके परिणामस्वरूप वह प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जैसा कि धारा में उल्लेख किया गया है । अतः, उस धारा में प्रकल्पित प्रतिकूल प्रभाव किसी भिन्न न्यायालय में अपील की सुनवाई किए जाने से पृथक् कोई बात होनी चाहिए । किसी प्रतिकूल निष्कर्ष के परिणामस्वरूप अचंभित करने वाला परिणाम निकल सकता है कि वह धारा अतिमूल्यांकन या न्यूनमूल्यांकन के कारण उद्भूत होने वाली अधिकारिता संबंधी त्रुटियों में सुधार करने के उद्देश्य से अधिनियमित की गई थी किन्तु यह कि वास्तव में इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई है । अतः, हमारी स्पष्ट राय यह है कि इस धारा द्वारा अनुध्यात प्रतिकूल प्रभाव, अपील की सुनवाई किसी ऐसे न्यायालय में, जो कि अंतिम रूप से यथा-अवधारित वाद के सही मूल्यांकन के आधार पर सुनवाई करने के लिए सक्षम नहीं होता, किए जाने संबंधी तथ्य से कुछ भिन्न है ।"
>
> (जोर देने के लिए रेखांकन किया गया है)

न्यायालय ने अधिकारिता संबंधी आक्षेप को इस आधार पर नामंजूर कर दिया था कि प्रथम बार कोई आक्षेप नहीं किया गया था और वाद फाइल

करने वाला पक्षकार अपील के प्रक्रम पर उस न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में आक्षेप करने के लिए प्रवारित था । इस न्यायालय ने इस प्रकार निष्कर्ष निकाला :–

> "16. यदि विधि यह नहीं थी कि ऐसे न्यायालय की डिक्री को, जिसे यदि अतिमूल्यांकन या न्यूनमूल्यांकन नहीं किया गया होता तो वाद या अपील के संबंध में कोई अधिकारिता नहीं थी, अकृत माना जाना चाहिए, तो इस तथ्य के आधार पर कि उन्होंने स्वयं इसका अवलंब लिया है, उन्हें न्यायालय में अधिकारिता की कमी को स्थापित करने से रोका नहीं जाएगा । तथापि, वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 के अधीन ऐसी स्थिति नहीं है ।"

इस प्रकार, जहां अधिकारिता संबंधी त्रुटि ऐसी किस्म की है, जो कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 या वाद मूल्यांकन अधिनियम, 1887 की धारा 11 के अंतर्गत आती है, वहां अधिकारिता संबंधी आक्षेप उसके अधीन उल्लिखित रीति में और शर्तों के अध्यधीन ही किया जा सकता है । **किरन सिंह** (उपर्युक्त) वाला निर्णय प्रत्यर्थी के मामले को सहायता मिलना तो दूर, उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि क्षेत्रीय अधिकारिता और धनीय अधिकारिता के संबंध में आक्षेप विषयवस्तु से संबंधित अधिकारिता के संबंध में किए जाने वाले आक्षेप से भिन्न है । क्षेत्रीय अधिकारिता की कमी से संबंधित कोई आक्षेप किसी सिविल न्यायालय की वाद ग्रहण करने संबंधी अधिकारिता की अंतर्निहित कमी की जड़ तक नहीं जाता है ।

13. **हीरालाल** बनाम **कालीनाथ**[1] वाले मामले में एक व्यक्ति ने उसे देय कमीशन की वसूली करने के लिए बम्बई उच्च न्यायालय की आरंभिक शाखा में एक वाद फाइल किया था । वह मामला माध्यस्थम् के लिए निर्देशित कर दिया गया था और इसके परिणामस्वरूप वादी के पक्ष में एक अधिनिर्णय दिया गया था । अधिनिर्णय के निबंधनों के अनुसार एक डिक्री पारित की गई थी और अंततोगत्वा उसे उच्च न्यायालय की डिक्री में शामिल कर दिया गया था । निष्पादन कार्यवाहियों में, निर्णीत-ऋणी ने इस आधार पर विरोध किया कि वाद हेतुक का कोई भी भाग बम्बई में उद्भूत नहीं हुआ था और इसलिए उच्च

---

[1] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 199.

न्यायालय को उस हेतुक का विचारण करने की अधिकारिता नहीं थी और उसके अनुसरण में की गई सभी कार्यवाहियां पूर्णतः अधिकारितावहीन थीं और इस प्रकार वे अकृत थी । इस न्यायालय के चार न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस दलील को नामंजूर करते हुए निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "बम्बई उच्च न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता से संबंधित आक्षेप एक ऐसा आक्षेप है जो कि न्यायालय की सक्षमता के बारे में नहीं है और इसलिए उसका अधित्यजन किया जा सकता है । वर्तमान मामले में, जब वादी ने बम्बई उच्च न्यायालय की आरंभिक शाखा से लैटर्स पेटेंट के खंड 12 के अधीन इजाजत प्राप्त की थी तब प्रक्रिया की या इजाजत अनुदत्त करने वाले आदेश की शुद्धता को प्रतिवादी द्वारा प्रश्नगत किया जा सकता था या उसके द्वारा आक्षेप का अधित्यजन किया जा सकता था । जब वह मामले को न्यायालय के माध्यम से माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने के लिए सहमत हो गया था तब उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने अपने लिखित कथन में उसके द्वारा न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के संबंध में किए गए अपने आक्षेप का अधित्यजन कर दिया था । यह सुस्थापित है कि किसी न्यायालय की स्थानीय अधिकारिता के बारे में किया जाने वाला आक्षेप उसी आधार पर खरा नहीं उतरता जैसे कि किसी मामले का विचारण करने के संबंध में न्यायालय की सक्षमता के बारे में किया गया कोई आक्षेप खरा उतरता है । किसी मामले का विचारण करने की किसी न्यायालय की सक्षमता अधिकारिता की जड़ तक जाती है और जहां इसमें कमी होती है वहां यह अधिकारिता की अंतर्निहित कमी का मामला होता है । दूसरी ओर, किसी न्यायालय की स्थानीय अधिकारिता के बारे में किसी आक्षेप का अधित्यजन किया जा सकता है और इस सिद्धांत को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 जैसी अधिनियमितियों द्वारा कानूनी मान्यता प्रदान की गई है ।"
>
> (जोर देने के लिए रेखांकन किया गया है)

हर्षद चिमन लाल मोदी बनाम **डी. एल. एफ. यूनिवर्सल लिमिटेड**[1] वाले

---

[1] (2005) 7 एस. सी. सी. 791.

मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि क्षेत्रीय और धनीय अधिकारिता के बारे में कोई आक्षेप यथासंभव सर्वप्रथम अवसर पर किया जाना होता है । यदि उसे यथासंभव शीघ्र नहीं उठाया जाता है तो इसे पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर उठाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है । इस न्यायालय ने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "30. किसी न्यायालय की अधिकारिता को अनेक प्रवर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है । महत्वपूर्ण प्रवर्ग ये हैं (i) क्षेत्रीय या स्थानीय अधिकारिता; (ii) धनीय अधिकारिता; और (iii) विषयवस्तु के संबंध में अधिकारिता । जहां तक क्षेत्रीय और धनीय अधिकारिताओं का संबंध है, ऐसी अधिकारिता के संबंध में आक्षेप यथासंभव सर्वप्रथम अवसर पर और किसी भी दशा में विवाद्यकों के स्थिरीकरण पर या उससे पूर्व किया जाना होता है । इस संबंध में विधि स्थापित है कि यदि ऐसा आक्षेप यथासंभव शीघ्र नहीं किया जाता है तो पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर इसे करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है । तथापि, विषयवस्तु के बारे में अधिकारिता पूर्णतः सुभिन्न है और वह भिन्न आधार पर आधारित है । जहां किसी न्यायालय को कानून, चार्टर या कमीशन द्वारा अधिरोपित किसी परिसीमा के कारण वाद की विषयवस्तु के संबंध में कोई अधिकारिता नहीं है वहां न्यायालय हेतुक या मामले पर कार्यवाही नहीं कर सकता है । ऐसे किसी न्यायालय द्वारा, जिसे कोई अधिकारिता नहीं है, पारित कोई आदेश अकृत होता है ।"

हशम अब्बास सैयद बनाम **उस्मान अब्बास सैयद**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "24. तथापि, हम यह जोड़ना चाहेंगे कि किसी ऐसे न्यायालय द्वारा, जिसे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 को ध्यान में रखते हुए क्षेत्रीय या धनीय अधिकारिता प्राप्त नहीं है, पारित डिक्री और किसी ऐसे न्यायालय द्वारा, जिसे वाद की विषयवस्तु के संबंध में कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं है, पारित डिक्री के बीच विभेद किया जाना चाहिए । जबकि पूर्ववर्ती मामले में, अपील

---

[1] (2007) 2 एस. सी. सी. 355.

न्यायालय डिक्री में तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकेगा जब तक कि प्रतिकूल प्रभाव दर्शित नहीं कर दिया जाता है, साधारणतया मामलों के दूसरे प्रवर्ग में हस्तक्षेप किया जाएगा ।"

इसी प्रकार, **मंटू सरकार** बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"20. तथापि, वाद की विषयवस्तु के संबंध में अधिकारिता तथा क्षेत्रीय और धनीय अधिकारिता के बीच विभेद अवश्य किया जाना चाहिए । जबकि पूर्ववर्ती प्रवर्ग के अंतर्गत आने वाले मामले में किया गया निर्णय अकृत होगा किन्तु पश्चात्वर्ती प्रवर्ग वाले मामले में ऐसा नहीं होगा । यह कोई ऐसा मामला नहीं है जिसमें अधिकरण को दावे की विषयवस्तु के संबंध में कोई अधिकारिता नहीं थी,..... हमारी राय में, न्यायालय को प्रथम प्रत्यर्थी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ने संबंधी किसी निष्कर्ष के अभाव में, अपील को ग्रहण नहीं करना चाहिए था ।"

14. प्रस्तुत मामले में, निष्पादन में जो आक्षेप किया गया था उसका संबंध वाद की विषयवस्तु से नहीं है । यह क्षेत्रीय अधिकारिता से संबंधित आक्षेप था, जो कि किसी सिविल न्यायालय द्वारा वाद ग्रहण करने संबंधी अधिकारिता या उसकी अंतर्निहित कमी की जड़ तक नहीं जाता है । कोई निष्पादन न्यायालय डिक्री से पीछे नहीं हट सकता और उसे डिक्री को उसी रूप में, जैसी वह है, निष्पादित करना चाहिए । **वासुदेव धनजीभाई मोदी** बनाम **राजाभाई अब्दुल रहमान**[2] वाले मामले में याची ने प्रतिवादी-किराएदार को बेदखल करने के लिए अहमदाबाद के लघुवाद न्यायालय में एक वाद फाइल किया था । वह वाद अंततोगत्वा इस न्यायालय द्वारा उसके पक्ष में डिक्री कर दिया गया था । निष्पादन कार्यवाहियों के दौरान, प्रतिवादी-किराएदार ने यह आक्षेप किया कि लघुवाद न्यायालय को वाद ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं थी और उसकी डिक्री अकृत थी । डिक्री का निष्पादन करने वाले न्यायालय और लघुवाद न्यायालय ने इस दलील को नामंजूर कर दिया । उच्च

---

[1] (2009) 2 एस. सी. सी. 244.

[2] [1974] 3 उम. नि. प. 1685 = (1970) 1 एस. सी. सी. 670.

न्यायालय ने लघुवाद न्यायालय के आदेश को उलट दिया और निष्पादन संबंधी याचिका को खारिज कर दिया । इस न्यायालय में अपील करने पर, इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उच्च न्यायालय के निर्णय को उलट दिया और निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "6. डिक्री निष्पादित करने वाला न्यायालय डिक्री पर पुनः विचार नहीं कर सकता; पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों के बीच उसे डिक्री को इसको प्रकट शब्दों के अनुसार ही मानना चाहिए और वह इस संबंध में कोई आक्षेप स्वीकार नहीं कर सकता कि डिक्री विधि की दृष्टि से या तथ्यों के आधार पर गलत थी । कोई डिक्री जब तक कि उसे अपील या पुनरीक्षण में समुचित कार्यवाही द्वारा अपास्त न कर दिया जाए, पक्षकारों के बीच आबद्धकर होती है भले ही वह गलत हो ।
>
> 8. यदि अभिलेख को देखने से ही डिक्री बिना अधिकारिता की हो और प्रश्न क्षेत्रीय अधिकारिता से संबंधित न हो या वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 के अधीन न हो तो डिक्री करने की न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में आक्षेप उठाया जा सकता है; जहां पर इस बात का अवधारण करने के लिए कि क्या उस न्यायालय को जिसने डिक्री पारित की थी वाद ग्रहण करने और उसका विचारण करने की अधिकारिता नहीं थी, तथ्यों का अन्वेषण करना आवश्यक हो वहां निष्पादन कार्यवाही में आक्षेप नहीं किया जा सकता ।"

15. इस पृष्ठभूमि में, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में प्रकटतः त्रुटि की थी कि यह विनिश्चित करना निष्पादन न्यायालय की अधिकारिता के भीतर है कि विभाजन के वाद में डिक्री क्षेत्रीय अधिकारिता के अभाव में पारित की गई थी अथवा नहीं ।

16. प्रत्यर्थी ने प्रथम अपील (2015 की प्रथम अपील सं. 43) फाइल की है जिसमें अधिकारिता संबंधी प्रश्न उठाया गया है । हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि प्रस्तुत निर्णय में निकाले गए निष्कर्ष से प्रथम अपील में पक्षकारों के अधिकारों और उनकी दलीलों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

17. उच्च न्यायालय ने निष्पादन न्यायालय के निर्णय को उलटते समय प्रकटतः अधिकारिता से परे कार्य किया है, जिसने उस न्यायालय की ओर से जिसने डिक्री पारित की थी, क्षेत्रीय अधिकारिता की कमी के आधार पर डिक्री के निष्पादन के संबंध में आक्षेप को ग्रहण करने से इनकार करके सही किया था ।

18. हमने इस दलील में भी कोई सार नहीं पाया है कि उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय, जो कि प्रतिप्रेषण संबंधी आदेश है, अंतर्वर्ती आदेश की प्रकृति का है, जिसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा निष्पादन न्यायालय को क्षेत्रीय अधिकारिता की कमी के आधार पर डिक्री की विधिमान्यता के संबंध में आक्षेप ग्रहण करने का निदेश दिया है । ऐसा आक्षेप निष्पादन न्यायालय के समक्ष नहीं किया जाएगा । इसके अतिरिक्त, यह आक्षेप कि रांची स्थित संपत्ति एक ही पूर्वज की नहीं थी, गुणागुण का विषय है, जो कि हर हालत में प्रथम अपील में समुचित न्यायालय के समक्ष उठाया जाना चाहिए ।

19. उपर्युक्त कारणों से, हम अपील मंजूर करते हैं और उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त करते हैं । निष्पादन न्यायालय, निष्पादन कार्यवाहियों को शीघ्रतापूर्वक पूरा करेगा । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.